© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

अलङ्कारशेखराभिमत शब्दशक्तियों के स्वरूप का विवेचन

प्रगति देवांशी त्रिपाठी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोध आलेख सार – आचार्य केशवमिश्र ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अलङ्कारशेखर में अपने पूर्ववर्ती सभी काव्यशास्त्रीय आचार्यों के मतों का समन्वय करते हुए अपना अभिमत सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। अन्य पूर्व आचार्यों की भाँति ही आचार्य केशवमिश्र भी तीन प्रकार के शब्द शक्तियों को अङ्गीकार करते हैं तथा प्रत्येक शब्द शक्ति के स्वरूप को भी विवेचित करते हैं। पुनश्च अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना के विवेचन में भी जो लक्षण आचार्यों ने प्रतिपादित किये हैं, उसी प्रकार आचार्य केशवमिश्र ने भी शब्दशक्तियों के स्वरूप का विवेचन किया है।

मुख्य शब्द – आचार्य केशवमिश्र, अलङ्कारशेखर, काव्यशास्त्रीय, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना।

काव्यतत्त्वों के पर्यालोचक ग्रन्थ 'काव्यशास्त्र' कहे जाते हैं। इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'काव्यात्मा' के विषय में प्रधानतया विचार प्राप्त होता है। विभिन्न आचार्यों ने अपने–अपने अनुसार काव्य के आत्मतत्त्व स्वीकार किये हैं। इस विषय में छः प्रमुख सम्प्रदाय प्राप्त होते हैं–

1. अलङ्कार सम्प्रदाय।
2. रस सम्प्रदाय।
3. ध्वनि सम्प्रदाय।
4. वक्रोक्ति सम्प्रदाय।
5. रीति सम्प्रदाय।
6. औचित्य सम्प्रदाय।

इन सम्प्रदायों में 'रस सम्प्रदाय' अत्यन्त प्रतिष्ठित है। इस रस सम्प्रदाय परम्परा में आठवीं शताब्दी में आचार्य शौद्धोदनि हुए। इन्हीं के ग्रन्थ की कारिकाओं पर सोलहवीं शताब्दी के 'आचार्य केशवमिश्र' ने वृत्ति तथा उदाहरण लिखा। इस प्रकार आचार्य केशव मिश्र का 'अलङ्कारशेखर' ग्रन्थ आचार्य शौद्धौदनि की कारिकाओं की वृत्ति तथा उदाहरण सहित व्याख्या है।

'अलङ्कारशेखर' में आचार्य केशवमिश्र ने 'काव्यतत्त्वों' का विशद् विवेचन किया है। इस ग्रन्थ में आठ रत्न हैं, जिसे मरीचियों में विभक्त किया गया है। 'प्रथम रत्न' के 'प्रथम' तथा 'द्वितीय मरीचि' में काव्यलक्षण, रीतियों आदि का वर्णन करने के पश्चात्, आचार्य केशवमिश्र ने 'तृतीय मरीचि' में 'शब्दवृत्तियों' अथवा 'शब्द शक्तियों' का विवेचन किया है।

आचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों मम्मट तथा विश्वनाथ आदि का अनुसरण करते हुए तीन प्रकार की शब्द शक्तियों को स्वीकार किया है[1] – शक्ति, लक्षणा तथा व्यंजना। 'शक्ति' को ही 'अभिधा' के नाम से भी जाना जाता है।

अभिधा–

अभिधा को मुख्य अथवा प्रधान वृत्ति माना जाता है। इसे ही आचार्य ने 'ईश्वरेच्छा' भी कहा है।[2] इसी शक्ति को 'सङ्केत' भी कहा गया है।

आचार्य मम्मट तथा साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के मत में भी 'अभिधा' शब्द की प्रधान शक्ति होती है। काव्यप्रकाशकार के अनुसार, साक्षात्सङ्केतित अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला शब्द 'वाचक' कहा जाता है।[3]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–सङ्केतितार्थ का बोध कराने वाली शब्द शक्ति अभिधा कही जाती है।[4]

यह अभिधा वृत्ति पदों में रहती है। पदों में सङ्केतग्रह आठ प्रकार से होता है– कोश, व्याकरण, आप्तोक्ति, वाक्यशेष, उपमा, प्रसिद्ध पदों का सहयोग, प्रसङ्गतः प्राप्ति तथा व्यवहार द्वारा।[5]

आचार्य विश्वनाथ के मत में भी सङ्केतग्रह इन्हीं आठ प्रकारों से होता है। साहित्यदर्पणकार के शब्दों में–शक्तिग्रह, व्याकरण, उपमान, कोशशास्त्र, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवृत्ति तथा सिद्ध पद के सान्निध्य, इन आठ प्रकारों से सङ्केतग्रह होता है।[6]

'व्याकरणशास्त्र' धातुपाठ द्वारा धातुओं के अर्थों का निर्देश करता है। जैसे– डुकृञ् करणे, भू सत्तायाम, विद् ज्ञाने आदि। इसी प्रकार 'प्रकृति–प्रत्यय' के माध्यम से सुबन्त, कृदन्त, कृत्यान्त तद्धितान्त पदों में भी सङ्केतग्रह होता है। 'उपमान' से 'गौरिव गवयः' इत्यादि अतिदेश वाक्यों की सहायता से सङ्केतग्रह होता है।

'कोशशास्त्र' का तो लक्ष्य ही है– सङ्केतग्रह कराना। जैसे– ''वसु तोये धने मणौ।'' यह वाक्य 'वसु' शब्द का सङ्केत जल, धन तथा मणिरूप अर्थों में निर्दिष्ट करता है।

'आप्त' का अर्थ है–विश्वस्त अथवा प्रमाणभूत उपदेष्टा पुरूष। ऐसा व्यक्ति जब किसी पशु आदि के बारे में बताता है कि 'यह पशु अश्व के नाम से पुकारा जाय' तो सुनने वाले जिन्हें 'अश्व' शब्द का सङ्केतितार्थ ज्ञात नहीं है, वे लोग अश्व शब्द का सङ्केतग्रह उस पशु विशेष में जान लेते हैं।

'व्यवहार' द्वारा सङ्केतितार्थ को जानने वाले बालकादि को अपने उत्तमवृद्ध तथा मध्यमवृद्ध के क्रियाकलापों द्वारा शब्द विशेष के सङ्केतों का ज्ञान होता है।

'प्रसिद्ध पद' के सान्निध्य से भी सङ्केतग्रह होता है। जब कहा जाता है–'प्रभिन्न कमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति।' तब यहाँ प्रभिन्न कमलोदर, मधु तथा पान क्रिया ये तीनों ही प्रसिद्ध हैं तथा कमलपुष्प के मधुपान का अन्वयी होने के कारण 'मधुकर' शब्द स्वयं अपना 'भ्रमर' रूप अर्थ बता देता है। यदि कोई व्यक्ति 'मधुकर' शब्द का सङ्केतितार्थ नहीं भी जानता तो अन्य प्रसिद्ध पदो ंके उल्लेख मात्र से उनसे जुड़े 'मधुकर' शब्द का सङ्केतितार्थ जान लेता है।

अभिधा अथवा शक्ति के अनन्तर आचार्य ने 'लक्षणा' नामक दूसरी वृत्ति की विवेचना की है।

लक्षणा–

आचार्य केशवमिश्र के अनुसार– 'तात्पर्यानुपपत्ति' अथवा 'मुख्यार्थानुपपत्ति' होने पर 'लक्षणा' प्रवर्तित होती है और यह लक्षणा मुख्यार्थ अथवा शक्यार्थ सम्बन्ध लेकर ही होती है।[7]

आचार्य मम्मट तथा आचार्य विश्वनाथ ने भी 'लक्षणा' का विशद् विवेचन किया है। काव्यप्रकाशकार के अनुसार–मुख्यार्थ का बाध होने पर मुख्यार्थ से सम्बन्धित रूढि अथवा प्रयोजन के कारण जिस शब्द शक्ति के द्वारा अन्य अर्थ लक्षित होता है, वह शब्दशक्ति 'लक्षणा' कहलाती है।[8]

साहित्यदर्पणकार लक्षणा को शब्द की आरोपिता वृत्ति मानते हैं। उनके अनुसार–मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढि अथवा प्रयोजन के बल पर जिस शब्द शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संयुक्त अर्थ की प्रतीति होती है, वही लक्षणा है। यह अर्पित अर्थात् आरोपित शब्द शक्ति होती है।[9]

आचार्य केशवमिश्र ने 'मुख्यार्थानुपपत्ति' को ही प्रधानतया लक्षणा का कारण माना है। आचार्य के अनुसार 'निर्माल्यं नयनश्रियः'[10] इत्यादि श्लोक में 'निर्माल्य' तथा 'दास' आदि पदों का सम्बन्धित पदों 'कुवलय' तथा 'शशि' आदि के साथ अन्वय नहीं हो पा रहा है अतः यहाँ पर लक्षणा प्रवर्तित होती है तथा 'निर्माल्य' आदि पदों से 'आत्मसमर्पण' रूप अर्थ लिया जाता है।

काव्यप्रकाशकार ने लक्षणा के छः भेद माने हैं–

शुद्धा उपादानलक्षणा।

शुद्धा लक्षण लक्षणा।

शुद्धा सारोपा लक्षणा।

शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा।

गौणी सारोपा लक्षणा।

गौणी साध्यवसाना लक्षणा।

वहीं साहित्यदर्पणकार ने लक्षणा के 80 भेद किये हैं परन्तु अलङ्कारशेखर में लक्षणा के भेद–प्रभेदों पर विचार प्राप्त नहीं होता है।

लक्षणा के पश्चात् आचार्य केशवमिश्र ने व्यंजना वृत्ति का विवेचन किया है।

व्यंजना–

यद्यपि शब्द की तीनों वृत्तियों का अपना महत्त्व है, परन्तु साहित्य में 'व्यंजना' को अद्वितीय स्थान प्राप्त है। ध्वनिवादी आचार्यों ने इसे ही 'ध्वनि' अथवा 'व्यङ्ग्यार्थ' के रूप में प्रतिष्ठित किया है। मीमांसक तथा नैयायिक आचार्यों ने भी 'व्यंजना' को स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने लक्षणा में ही इसका अन्तर्भाव माना है।

'व्यंजना' शब्द की तृतीय वृत्ति है। अभिधा तथा लक्षणा के विरत हो जाने पर 'व्यंजना' प्रवृत्त होती है। अभिधा के द्वारा साक्षात् अर्थ का बोध हो जाने पर वक्ता के प्रयोजन रूप अर्थ को प्रकट करने के लिए 'व्यंजना' वृत्ति की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ :–'गङ्गायां घोषः' में शैत्य–पावनत्व की प्रतीति 'व्यंजना' द्वारा ही होती है।

'काव्यप्रकाशकार' के शब्दों में–जिस प्रयोजन विशेष की प्रतीति कराने के लिए लाक्षणिक शब्द का आश्रय लिया जाता है, उस प्रयोजन विशेष के प्रतिपादन में 'व्यंजना' के अतिरिक्त अन्य शब्द व्यापार समर्थ नहीं है।[11]

'व्यंजना' के विषय में आचार्य विश्वनाथ का मत है– अभिधा आदि के विरत हो जाने पर जिस शब्द शक्ति के द्वारा वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ से भिन्न अन्यार्थ की प्रतीति करायी जाती है, शब्द एवं अर्थादि की उस वृत्ति को 'व्यंजना' कहा जाता है।[12]

आचार्य केशव मिश्र के अनुसार– 'निः शेषच्युतचंदन'[13] इत्यादि श्लोक में 'अधम' पद के द्वारा 'दूती के रमण' अन्यार्थ की प्रतीति 'व्यंजना' के द्वारा ही होती है।

व्यक्ति की अलग–अलग भावनाओं के होने पर एक ही पद से भिन्न–भिन्न अर्थों की प्रतीति होती है।[14] उदाहरणार्थः–'रविरस्तं गतः' इत्यादि पद का सामान्य अर्थ सूर्यास्त है, परन्तु भिन्न–भिन्न भावनाओं वाले व्यक्ति इसका भिन्न–भिन्न अर्थ लेते हैं। 'रविरस्तं गतः' का अर्थ एक जिज्ञासु बालक 'स्वाध्याय समय' लेता है तो, 'अभिसारिका' के लिए यह 'अभिसरण काल' की प्रतीति कराता है। 'ग्वाले' आदि इस वाक्य का अर्थ गायों को वापस घर ले जाने से लगाते हैं, वहीं 'ऋषि' आदि के लिए 'रविरस्तं गतः' का अर्थ 'सन्ध्यावन्दन आदि के काल' से है।

अलङ्कारशेखरकार के अनुसार– यह व्यंजकता शक्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यङ्ग्यार्थ इन तीनों में भी प्रवृत्त होती है।[15] 'अवलोकय'.....[16] इत्यादि उदाहरण में प्रयुक्त 'निस्पन्द' शब्द से 'बलाका का क्रियाविरहत्व' सूचित होता है। इस 'क्रियाविरहत्व' रूप शक्यार्थ से 'बकगत आश्वस्त्ता' व्यंजित होती है।

लक्ष्यार्थ में व्यंजना को स्पष्ट करते हुए आचार्य का कथन है– 'मुखं विकसितस्मितं'.....[17] इत्यादि पद्य में विकास आदि जो धर्म कहे गये हैं वह पुष्पादि में सम्भव होते हैं, मुख में नहीं। अतः लक्षणा द्वारा 'विकसित' पद का अर्थ 'स्मित का फैलाव' लिया जाता है। इस लक्ष्यार्थ से नायिका को लोकोत्तर रमणीयता की व्यंजना होती है। शक्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ की भांति व्यङ्ग्यार्थ में भी व्यंजकता प्राप्त होती है। 'अवलोकय'..... इत्यादि उदाहरण में 'निस्पन्द' पद से 'क्रिया विरहत्व' रूप शक्यार्थ का बोध होता है और इस शक्यार्थ से बकगत आश्वस्तता व्यंजित होती है। 'बकगत आश्वस्तता' रूप व्यङ्ग्यार्थ से 'निर्जन स्थल होने के कारण यह उचित सङ्केतस्थल है' यह अर्थव्यंजित होता है।

इसी व्यंजना के आधार पर काव्य के तीन प्रकार स्वीकार किये गये हैं– उत्तम काव्य, गुणीभूत काव्य तथा अधम काव्य। जहाँ पर वाच्य की अपेक्षा व्यङ्ग्य चमत्कार का आधार होता है, वहाँ 'उत्तम काव्य' होता है।[18] इसे 'ध्वनि काव्य' भी कहा जाता है। जब वाच्यार्थ व्यङ्ग्यार्थ से अधिक चमत्कारकारक होता है तो वहाँ पर 'गुणीभूत काव्य' होता है।[19] इसे ही 'मध्यम काव्य' भी कहते हैं। जो काव्य व्यङ्ग्यरहित हो अथवा जहाँ पर व्यङ्ग्य चमत्कारकारक न हो उसे 'अधम काव्य' की श्रेणी में रखा जाता है।[20] इसे ही 'चित्रकाव्य' भी कहते हैं।

अभिधा तथा लक्षणा से इतर व्यंजना को मानने का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए अलङ्कारशेखरकार कहते हैं– संयोग, विप्रयोग आदि के कारण पद के शक्यार्थ का नियमन हो जाने पर जो दूसरा अर्थ प्रतीत होता है, वह व्यंजना के कारण ही सम्भव होता है। उसके लिये सङ्केताभाव के कारण अभिधा और हेतुता के अभाव से लक्षणा, दोनों ही वृत्तियाँ अप्रवृत्त हैं अतः उस अर्थ के प्रकाशनार्थ व्यंजना वृत्ति आवश्यक है।

'भद्रात्मनों'.....[21] इत्यादि पद्य में प्रकरणवशात् शक्यार्थ के 'राजा' रूप अर्थ में नियन्त्रित हो जाने पर 'गजरूप' अन्यार्थ का बोध व्यंजना के द्वारा ही सम्भव होता है। व्यंजना के अभाव से इस अर्थ की प्रतीति सम्भव ही नहीं है, तथा 'अद्यारम्य'. .....[22] इत्यादि पद्य में शक्यार्थ के द्वारा सज्जन के प्रति वहाँ घूमना उचित नहीं है, ऐसे अर्थ की प्रतीति व्यंजना के द्वारा ही सम्भव होती है।

इस प्रकार आचार्य केशवमिश्र ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अलङ्कारशेखर में अपने पूर्ववर्ती सभी काव्यशास्त्रीय आचार्यों के मतों का समन्वय करते हुए अपना अभिमत सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। एवंविध आचार्य ने शब्दशक्तियों के स्वरूप विवेचन के प्रसङ्ग में भी पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समन्वय करते हुए अपना लक्षण बताते हुए शब्द शक्तियों के स्वरूप को विवेचित किया है। अन्य पूर्व आचार्यों की भाँति ही आचार्य केशवमिश्र भी तीन प्रकार के शब्द शक्तियों को

अङ्गीकार करते हैं तथा प्रत्येक शब्द शक्ति के स्वरूप को भी विवेचित करते हैं। पुनश्च अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना के विवेचन में भी जो लक्षण आचार्यों ने प्रतिपादित किये हैं, उसी प्रकार आचार्य केशवमिश्र ने भी शब्दशक्तियों के स्वरूप का विवेचन किया है। इन सभी आचार्यों के स्वरूप विवेचन में भले ही स्वरूपगत अन्तर दृष्टिगोचर होता है, परन्तु उनमें कोई तात्त्विक भेद परिलक्षित नहीं होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. पदानां वृत्तयस्तिस्त्रः। (अलङ्कारशेखर 1/3)
2. तत्रशक्तिरीश्वरेच्छा। (अलङ्कारशेखर 1/3)
3. साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
4. तत्र सङ्केतितार्थस्य बोधनादग्रिमाऽभिधा। (साहित्य दर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
5. कोश व्याकरणाप्तोक्तिवाक्यशेषोपमादितः।
   प्रसिद्ध पदसम्बन्धाद् व्यवहाराच्च बुध्यते।। (अलङ्कारशेखर 1/3)
6. ''शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
   वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।''
   (साहित्य दर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
7. लक्षणा शक्य सम्बन्धः। सा च तात्पर्यानुपपत्त्या मुख्यार्थनुपपत्त्या वा प्रवर्तते।
   (अलङ्कारशेखर 1/3)
8. ''मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
   अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।'' (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
9. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
   रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।। (साहित्य दर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
10. निर्माल्यं नयनश्रियः कुवलयं वक्त्रस्य दासः शशी,
    भ्रूयुग्मस्य सनाभि मन्मथधनुर्ज्योत्स्ना स्मितस्यांचलम्।
    सङ्गीतस्य च मत्तकोकिलरूतान्युच्छिष्टमेणीदृशः;
    सर्वाकारमहो! विधेः परिणतं विज्ञानशिल्पं चिरात्।। (अलङ्कारशेखर 1/2)
11. यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
    फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
12. विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
    सा वृत्तिर्व्यजंना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।। (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
13. निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
    नेत्रे दूरमनंजने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
    मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
    वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तास्याधमस्यान्तिकम्। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
14. विचित्र सहकारिणाम्। (अलङ्कारशेखर 1/3)
15. व्यजंनार्थत्रयेऽपि च (अलङ्कारशेखर 1/3)

16. अवलोकय निःस्पन्दो विसिनीपत्रे बको भाति।
निर्मलमरकतभाजन परिस्थितो विमलशङ्ख इव। (अलङ्कारशेखर 1/3)

17. मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिम प्रेक्षितं,
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः।
उरो मुकुलित स्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं,
बतेन्दुवदनातनौ तरूणिमोद्गमो मोदते।। (अलङ्कारशेखर 1/3)

18. वाच्य निरूपित व्यङ्ग्यप्रकर्षाधारत्वमुत्तमत्वम्। (अलङ्कारशेखर 1/3)

19. गुणीभूतं तदपेक्षया वाच्यस्यैव चमत्कारित्वात्। (अलङ्कारशेखर 1/3)

20. चमत्कृति हेतु व्यङ्ग्यरहित्वधमत्वम्। (अलङ्कारशेखर 1/3)

21. भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोर्विशालवंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसंग्रहस्य।
यस्यानुपप्लुतगतेः परवारणस्य दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत्।।
(काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)

22. अद्यारम्य चिरं साधो! निःशङ्कमिह संचर।
रेवाकुंजे मृगेन्द्रेण स दुष्टः श्वाद्य घातितः।। (अलङ्कारशेखर, 1/3)